Review Of Research
Vol. 4 | Issue. 6 | March. 2015
Impact Factor : 3.1402 (UIF)
ISSN:-2249-894X
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

बिहार में सामाजिक न्याय आन्दोलन – एक अध्ययन

विकास कुमार
बी0 ए0, एम0 ए0 (इतिहास),
शोध छात्र , ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा.

भूमिका

भारत जैसे विकासमान देशों में, जो एक प्राचीन सभयता का प्रतिनिधित्व करता है, और जिसकी प्राचीन संस्कृति के महत्वपूर्ण मूल्य अभी भी पालन करने के योग्य समझे जाते हैं जाति व्यवस्था की मूलभूत मान्यताओं का प्रचलित रहना स्वभाविक है। ऐसी स्थिति में जातियाँ अपने संगठनों के साथ भारत में राजनीतिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दबाव समूहों की भूमिका अदा करती है। फलतः अपने हितों का सम्पादन करने के लिए जातियों के बीच प्रतिद्वन्दिता और संघर्ष का होना स्वभाविक है। इस संदर्भ में एल.पी विद्यार्थी ने टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "भारत में अन्तर्जातीय और अन्तसामूहिक संघर्षों की प्रकृति और उनकी निरन्तरता यहाँ कि सांस्कृतिक प्रतिकृति से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। पश्चिमी देशों में 19वीं सदी के दौरान घटित होने वाली औद्योगिक क्रान्ति नक ग्रामीण संस्कृति के प्राथमिक समूहों का पूर्णतः विध्वंस कर दिया था और उनकी जगह पर सहायक समूहों, अर्थात हित समूहों और वर्गों, के प्रभुत्व को स्थापित कर दिया। दस तरह संसारके लगभग सभी औद्योगिक देशों में वर्तमान काल में अन्तर्सामूहिक संघर्ष वास्तव में वर्ग संघर्ष बन गये हैं। इनके विपरीत पश्चिमी देशों के प्रभाव क्षेत्र के बाहर उन विकासमान देशों में जहाँ अभी भी प्राचीन संस्कृतियाँ वर्त्तमान हैं अन्तर्सामूहिक संघर्ष की पहचान ऐसे तनावों से होती है जिनका अर्थ व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत भारत जैसे देशों में धर्म, आदत, परम्परायें जीवन की शैली इत्यादि सभी अतर्सामूहिक तनावों में रचे बसे हुए है। जहाँ तक भारत में जातीय संघर्ष के कारणें का सवाल है एल.पी. विद्यार्थी ने पुनः लिखा है कि, चूँकि भारत अपनी प्राचीन संस्कृति के साथ अनेकों ऐसी जातियों एवं उप–जातियों में विभाजित है जिनमें सामाजिक स्थिति और आर्थिक परिस्थितियों को लेकर काफी विभिन्नता है। निम्न जातियों के द्वारा एक लम्बे अर्से से अपनी जीवन की परिस्थितियों को सुधारने के लिए संघर्ष चलाया जा रहा है। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप ऊँची जाति का यह प्रयास रहा है कि ऐसे प्रयासों का विरोध किया जाय क्योंकि इन प्रयासों के मध्य में आर्थिक विकास के मन्द गति और राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षा भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। आर्थिक विकास की मन्दगति के कारण आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य एक ओर वस्तुओं का आभाव रहता है और वर्त्तमान उत्पादन से सम्बन्धित वस्तुओं के आवंटन को लेकर यह झगड़ा और भी सामाजिक तनावों को पैदा करता है। दूसरी ओर भारत की अकुशल और स्वार्थी राजनीतिक सामाजिक एकता, शान्ति और राष्ट्रीयहित का ख्याल किये बिना वोट की राजनीति से प्रेरित होकर जातियों के बीच वैमनस्य पैदा करते है और एक तरह से उनमें ऐसी भावना का संचार करते हैं जिसे प्रसिद्ध इतिहासकार टायनवी ने उम्मीदों की बढ़ती क्रांति कहा है। एल.पी. विद्यार्थी ने लिखा है उर्ध सामाजिक गतिशीलता, चाहे वह आर्थिक हो या व्यवसाय के परिवर्तन का द्योतक हो या उच्च जातियों के सांस्कृतिक नियमों एवं प्रथाओं को अपनाकर सांस्कृतिकरण की हो, किसी न किसी रूप में हमेशा भारत में जातियों एवं उपजातियों को उत्पन्न करने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया रही है। जब भी सामाजिक गतिशीलता के इन प्रयासों को रोकने की कोशिश उच्च जातियों के

द्वारा की गयी है सामाजिक तनाव पैदा हुए हैं और ये तनाव एक साथ ही आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्षों में व्यक्त हुए है। जब कभी भी जीवन की परिस्थितियों को सुधारने के प्रयास में पूरे देश में आन्दोलन का रूप लिया है। उन्हें रोकने की कोशिश की गयी है या उन्हें फलीभूत होने योग्य आर्थिक सुविधाओं को रोका गया है तब अन्तर्जातीय संघर्ष तीव्र हुए हैं। पारम्परिक भारत में संस्कृतीकरण महत्वाकांक्षी जाति के लिए न केवल बहुत महत्वपूर्ण था, बल्कि उसे प्राप्त करना कठिन भी था, क्योंकि द्विज जातियों के कर्मकाण्ड और जीवन शैली को अपनाने के विरूद्ध धार्मिक और कानूनी दोनों प्रकार के प्रतिबन्ध थे। अंग्रेजों द्वारा संस्कृतिकरण पर रोक लगाना अस्वीकार करने से सिद्धान्ततः वह सब सबके लिए सुलभ हो गया, यद्यपि हर जगह स्थानीय प्रभुत्वशाली जातियाँ प्रायः किसी निम्न जाति को ऊपर उठने से रोकने के लिए अक्सर ऐसे प्रतिबन्धों का बहिष्कार और मारपीट का प्रयोग करती थीं जो उन्हें फिर भी उपलब्ध थे। पर स्थानमूलक गतिशीलता और नगरीकरण में वृद्धि के साथ और शिक्षा तथा रोजगार के नए अवसरों के अधिकाधिक जातियों द्वारा उपयोग के फलस्वरूप, प्रभुत्वशाली जाति द्वारा बहिष्कार और मारपीट का भय यदि मिटा नही तो कम अवश्य हो गया। निम्न जातियाँ संस्कृतीकरण को अन्य तथा अधिक महत्वपूर्ण बातों का, जैसे शिक्षा, प्रतिष्ठापूर्ण नौकरी और राजनीतिक अधिकार का अनुलग्न तत्व समझने लगीं। उन्होंने यह भी देखा कि जाति–जाति स्थिति को उठाने के लिए केवल संस्कृतिकरण का मूल्य बहुत सीमित है। बिहार भी इनसे अछूता नहीं रहा है।

अन्तर्जातीय वैमनस्य से उत्पन्न तनाव

वर्त्तमान काल के सामाजिक संस्तरण के सबसे निम्न भाग में, अर्थात् हरिजनों में अन्तर्जातीय वैमनस्य से उत्पन्न तनावों को मुख्य रूप से देखा जा सकता है। इसके अलावे सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़ी जातियों के लिए संवैधानिक सुविधाओं ने भी ऊँची और पिछड़ी जातियों के बीच संघर्ष को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

आजकल देश के विभिन्न भागों से उच्च जातियों और अपने अधिकार का आग्रह करने वाले हरिजनों के बीच टक्करें होने के सामाचार मिलते हैं, पर यह तो संविधान द्वारा हरिजनों को दिए गए अधिकार गाँव के स्तर पर व्यवहार में यथार्थ होने की प्रक्रिया का ही अंग है। ज्यों–ज्यों अधिकाधिक हरिजन शिक्षित होकर अपने संवैधानिक अधिकारों के लिए आग्रह करेंगे, वैसे–वैसे स्थानीय टक्करें घटने के बजाय बढ़ेंगी। नए अवरों का लाभ उठाकर अपनी स्थिति में सुधार करने में जाति–समूहों के स्वरूप में ही परिवर्त्तन होता जा रहा है।

जहाँ तक बिहार का सवाल है 20वीं सदी के आगमन के बाद बिहार के विभिन्न जातियों में हिन्दू सामाजिक सोपान में अपने ऊपर उठाने के परिघटना ज्यादा प्रमुखता से दिखाई पड़ती है। इस सदी के पहले दो–तीन दशकों में निचली जातियों में अपना सामाजिक दर्जा ऊपर उठाने के लिए जाति सभाओं का गठन एक सामान्य परिघटना थी। अधिकांश मामलों में मोटा–मोटी एक जैसी प्रक्रिया अपनायी गयी। जाति का नया नाम चुना गया। सदस्यों को जनेऊ धारण करने के लिए प्रेरित किया गया। खान–पान के सवालों से जुड़े विविध प्रस्ताव पास किये गये। प्रस्ताव इस संबंध में भी थे कि गंदे पेशे छोड़ दिये जायें, विवाह की उम्र बढ़ायी जाये, विधवा विवाह पर रोक लगायी जाये आदि। निम्न जातियों ने यह सब मूल की गरिमा को बढ़ाने ओर पुराणपंथी ब्राह्मणों और राजपूतों से अपना नजदीकी संबंध दिखाने के लिए किया।

गहराई में झांके तो स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण या राजपूत का बिल्ला लगाकर सामाजिक उन्नयन के लिए निम्न जातियों का आंदोलन सारतः उनकी दयनीय सामाजिक–आर्थिक स्थिति की अभिव्यक्ति था। अपनी जाति सभाओं में वे मजदूरी बढ़ाने और अपनी सामाजिक स्थिति सुधारने के कदमों पर भी विचार करते थे। कई जगहों में कार्यक्रम का मुख्य एजेन्डा बेगार (बगैर मजदूरी के जबरिया काम) और दूसरे छोटे काम न करना होता था। ग्वालों ने जमीन्दारों (ज्यादा ऊँची जातियों के) और सरकारी अधिकारियों को रियायती दर पर दूध और दूध उत्पाद बेचना बंद कर दिया। कई जगहों में उन्होंने जनेऊ धारण करने के अलावा मवेशी चराने के परंपरागत अधिकार पर लगाये गये प्रतिबंधों के खिलाफ आंदोलन शुरू किया। ग्वालों की एक सभा–गोप जातीय सभा–अप्रैल 1923 में हुई जिसमें समुदाय के विकास की परियोजनाओं पर विचार किया गया। उन्होंने अपनी स्थिति सुधारने और स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व हासिल करने का आह्वान किया।

जातियों में तीव्रतर आत्मचेना और जाति सभाओं की स्थापना के परिणामस्वरूप जातियों के 'क्षैतिज प्रसार' में वृद्धि हुई। जाति सभाओं ने गतिशीलता की नई प्रेरणा को प्रकट भी किया और संगठित भी। उन्होंने जनगणना अधिकारियों को अलग–अलग जातियों की निचले वर्ण की बजाय किसी विशेष वर्ण में रखे जाने की माँग प्रस्तुत की। इन जाति सभाओं ने अपनी–अपनी जातियों की जीवन शैली संस्कृतीकरण की दिशा भी बदली। इसमें प्रायः वर्जित मांस का (मुर्गी, सूअर और गाय के मांस का) तथा शराब का त्याग करना और यज्ञोपवीत धारण करना था। साथ ही उनके अपने पारंपरिक धन्धे को छोड़ने के उनके प्रयत्न को संरक्षण भी दिया। इसका अन्य जातियों ने विरोध किया जिससे प्रतिद्वन्द्विता बढ़ी और कई स्थानों पर इसने दंगों का रूप ले लिया।

निम्न जातियों की सामाजिक–आर्थिक मांग

इस तरह निम्न जातियों की सामाजिक–आर्थिक मांगों को भी उनके जाति संघों ने हाथ में लिया। जो कुछ भी सामाजिक–आर्थिक लाभ हासिल किया जा सका, उसका ज्यादातर श्रेय जाति संघों को ही है। जाति संघों ने स्कूल, होस्टल और छात्रवृत्ति की स्थापना करके अपने सदस्यों को बेहतर शैक्षणिक सुविधाएँ उपलब्ध करायी, उनके उत्पादों को बेहतर दाम दिलाया और उत्पादन के कारकों को बेहतर बनाया। जातियों के नाम पर और जाति के लोगों की भलाई के लिए बड़ी तादाद में स्कूल, कॉलेज और छात्रावास खोले गये।

यहाँ भूलना नहीं चाहिए कि इसकी तुलना में ऊँची जातियों के जाति संघो पर आम तौर से अंग्रेजी पढ़े लोगों का वर्चस्व था और जमीन्दार तथा अन्य अमीर लोग उनका समर्थन करते थे।

सच्चिदानन्द सिन्हा ने विभिन्न जातियों के बीच होने वाले संघर्ष के दो मुख्य कारणों की चर्चा की है। पहले के अन्तर्गत उन्होंने वर्ण व्यवस्था को इसके लिए दोषी माना जिसके अनुसार जातियों की उच्चता या निकृष्टता जन्म के आधार पर तय होती है, हालांकि सच्चिदानन्द सिन्हा की मान्यता को स्वीकार करने में कठिनाई हो सकती है क्योंकि वैदिक वर्ण व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता के सभी द्वार खुले हुए थे क्योंकि वर्ण का आधार जन्म नहीं बल्कि कर्म था। बाद में वर्ण व्यवस्था अधोगति को प्राप्त कर जाति व्यवस्था में परिणत हो गयी और सब जातियों के सदस्यता का आधार कर्म के बदले जन्म हो गया। इसलिए यह कहा जा सकता है कि कर्म व्यवस्था में कलान्तर में अपने अन्तर्निहित श्रम के विभाजन के कारण जाति व्यवस्था को उत्पन्न किया और उसके बाद से जातियों के उच्चता या निष्कृष्टता का आधार जन्म बन गया। जो भी हो भारत में जाति व्यवस्था के कारण ही श्रेष्ठता और निकृष्टता की भावना पैदा हो गयी और बाद में यह जातियों के बीच उस वैमन्य का मुख्य आधार बन गया जो कलान्तर में जातियों के बीच सामाजिक स्थिति, आर्थिक सुविधाओं और राजनीतिक प्रतिबद्धताओं के रू‍प में प्रकट हुई। सच्चिदानन्द के अनुसार इसका दूसरा कारण शूद्रों और अन्त्यजों की सामाजिक स्थिति को निर्धारित करने वाले नियम हैं। इन मिथकों के अनुसार शूद्र आर्य वर्ग व्यवस्था की श्रृंखला के अन्तिम पायदान पर है जबकि अन्तयज या हरिजन या दलित वर्ण व्यवस्था के बाहर के लोग हैं, जिन्हें दासों के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों के स्थान को लेकर प्रारंभ से ही विवाद रखा है। वैदिक वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक गतिशीलता के द्वार के खूले रहने के कारण वर्गों का विभाजन विस्तृत श्रम का ही विभाजन था और इस कारण से जातियों के ऊपर श्रेष्टता या निकृष्टता का सिद्धान्त लागू होने लगा तब अपनी स्थिति के लिए शूद्रों ने ब्राह्मणों को दोषी पाया क्योंकि सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का यह उत्तरदायित्व था कि वे हिन्दू व्यवस्था के नियमों, नरम्पराओं और आदेशों का निर्धारण करें। इस प्रकार सच्चिदानन्द सिन्हा के अनुसार इन दोनों मिथकों, ने ब्राह्मणों से श्रेष्टता और अन्य जातियों में निकृष्टता की भ्रान्तियों को फैलाकर सामाजिक संघर्ष के बीज को सदा के लिए बो दिया है।

बिहार में जातियों के संघर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि बिहार में जातियों के संघर्ष का मुख्य कारण उनके बीच श्रेष्टता और निकृष्टता की भावना है जो युग युगान्तर से प्रचलित ही नहीं रही है बल्कि जिसे समय–समय पर घटने वाली विभिन्न घटनाओं ने और भी तीव्र बना दिया है। इस विद्वेष को कुछ बाधाओं ने और तीव्र किया है, जैसे अपनी ही जाति में शादी करना, विशेष तरह के व्यसायों का अनुसरण करना तथा खास तरह के जाति नियमों और आचरणों का पालन करना इत्यादि। इस सन्दर्भ में उत्तर बिहार के राजपूतों और भूमिहारों ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय होने का दावा करने वाले और यज्ञोपवीत

धारण करने वाले अहीरों को मारा–पीटा जाना उल्लेखनीय है। सच्चिदानन्द सिन्हा के शब्दों में भारत में व्यक्ति जन्म से ही कुछ खास तरह के मूल्यों के साथ जन्म लेता है और कालान्तर में उसे खास तरह के विचारों, सिद्धान्तों तथा आचरण संहिताओं के साथ जीना पड़ता है। ये सभी उसके जीवन दृष्टि को खास दिशा में निर्धारित करते हैं। इनका प्रभाव इतना गहरा पड़ता है कि शायद ही कोई व्यक्ति इनसे मुक्त होकर एक धर्म निरपेक्ष वैदिक दृष्टिकोण को अपना सके। फलतः वे अपने भ्रान्तियों को सुधारने के वजाय अपनी भावनाओं और पुर्वाग्रहों के लिए औचित्य की तलाश करते रह जाते हैं और इस प्रकार जाति संघर्ष समाज में चलता ही रहता है।

पिछड़ी जातियों के जागरण एवं बदलते सामाजिक पर्यावरण में पिछड़ी जातियों का मतलब मध्य जातियों से है जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था की अंतिम सीढ़ी है तथा जो द्विज जातियों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्यों के नीचे है। उन्हें सामान्यतः शूद्र भी कहा जाता है। इनमें 150 के लगभग जातियाँ हैं तथा इनकी सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति समान नहीं है। पिछड़े वर्गो में पिछड़ी जातियों के अलावे हरिजन या परिगणित जातियाँ तथा परिगणित जन जातियाँ भी शामिल है। पिछड़ी जातियां, जैसा कि हम देख चुके है विभिन्न मध्यस्तरीय जातियाँ, जो अपने आप में भी शीर्ष निम्न श्रृंखला में बँधी हुई है। बिहार में इन मध्यस्तरीय जातियों मे शीर्ष पर तीन मुख्य जातियाँ हैं जिन्हें उच्च स्तरीय पिछड़ी जातियाँ कहा जा सकता है तथा इन तीनों के नीचे अनेकों अन्य जातियां जिन्हें निम्न स्तरीय पिछड़ी जातियां कहा जा सकता है। इनमें धानुक, हजाम, कहार, तेली मुख्य है। जबकि उच्च स्तरीय पिछड़ी जातियां से तीन प्रमुख जातियाँ यादव, कुर्मी तथा बनिया का उदाहरण दिया जा सकता है। ब्लेयर ने इसी ढ़ंग से पिछड़ी जातियों का वर्गीकरण किया है। इन हिन्दु पिछड़ी जातियों के अलावे इनमें मुसलमान जातियाँ भी शामिल हैं। संविधान के अनुसार पिछड़ी जातियाँ एवं परिगणित जातियाँ एवं जनजातियों का सामूहिक नाम पिछड़ा वर्ग है तथा इन्हें संविधान के अनुसार कानूनी रूप से सुविधाएं दी गई।

सामाजिक दृष्टिकोण से पिछड़ी जातियों की वंचना का स्तर एक समान नहीं रहा है और इन सभी जातियों की सामाजिक स्थिति में काफी अन्तर रहा है। उदाहरण के लिए यादव कुर्मी, कोयरी तथा बनियां जातियों की आर्थिक स्थिति ब्राह्मणों से भी अच्छी रही है और अपनी आर्थिक सम्पन्नता के कारण ये जातियाँ सामाजिक दृष्टिकोण से जागृत रही है। इनके विपरीत कहार, धानुक, नाई, मल्लाह, तेली जैसी जातियों की सामाजिक स्थिति काफी स्थिति अभी भी खराब नौकरियों की सुरक्षा के नाम पर बनाए गए आन्दोलन में उच्च स्तरीय पिछड़ी जातियों के नेता एवं लोग ज्यादा सक्रिय रहे हैं और इससे मिलने वाली सुविधाओं का लाभ भी इन्हें ज्यादा मिलता रहा है, क्योंकि आर्थिक सम्पन्नता के कारण इन जातियों के नौकरी के लायक शिक्षा का प्रसार बहुत पहले से ही हो गया था। राजनीतिक दृष्टिकोण से भी विधान सभाओं एवं संसद में इन्हीं जातियों का प्रतिनिधित्व ज्यादा है। साथ ही उच्च जातियों के साथ सफल प्रतियोगिता में उन्हीं व्यक्तियों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति का पता चलता है।

निष्कर्ष–

इस प्रकार बिहार की जनता में विश्व चेतना उटी है जनता से आये हम लोग सचेतन हो रहे हैं, आत्म से लैस हो रहे हैं और यह भी सीख रहे हैं कि वे कौन से अधिकार और विशेषाधिकार हैं जो हमें सरकार से मांगनी चाहिए। अब जब हम समय मांगते हैं तो उसका मतलब यह है कि यह उन विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों या जातियों के हितों को प्रभावित करता है जो अभी तक प्रमुख्त्वशाली रहे हैं और बिहार के लाखों मेहनतकशों का शोषण करते रहे हैं।

संक्षेप में सामाजिक स्तर पर बिहार में जाति को लेकर समस्याओं के जटिल ही बने रहने की आशंका है, लेकिन दीर्घकालीन समय में व्यवस्क मताधिकार, औद्योगिक क्रान्ति जिसे हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ लाना चाहती हैं, साक्षरता और निचली जातियों में उच्चतर शिक्षा का प्रसार, हरिजनों को दिए गए नए कानूनी अधिकार, पिछड़ी जातियों को दी गई सुविधाएँ और उनकी जीवनशैली का अधिकाधिक संस्कृतीकरण धीरे–धीरे जाति व्यवस्था के घिनौने रूप को मिटाने में सहायक होगी।

संदर्भ सूची–

1. एल.बी. विद्यार्थी, "इन्टरग्रुप कनफ्लिक्टस इन इण्डिया" एण्ड कल्वरल टेन्ट इन इण्डिया, कलकत्ता, 1969, पृ.–34

2. एम.एन श्रीनिवास आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्त्तन, नई दिल्ली, 1967, पृ.–89
3. वही, पृ.–34–35.
4. एफ.जी बेली, बन्द सामाजिक स्तरीकरण, यूरोपीय समाज विज्ञान पत्रिका, खंड 4, 1963, पृ.–107–124, और ए. बेतील : भारत में खुला और बन्द सामाजिक स्तरीकरण।
5. बिहार एवं उड़ीसा 1923 में, पटना, 1924, पृ.–7. आबादी कोलिन्स, बिहार।
6. 1921 की भारतीय जनगणना रिपोर्ट, पृ.–231–32.
7. सच्चिदानन्द सिन्हा, कास्ट सिस्टम मीथ, रियल्टी, चैलेन्ज (न्यू दिल्ली, इन्टेलेक्चुअल पास्लिसिंग हाउस), 1982, पृ. –10–12.
8. बिहार और उड़ीसा जनगणना रिपोर्ट, 1931, पृ.–267–268.
9. वही।
10. चेरी, ब्लेयर, राइजिंग वुलक्स एण्ड बैकवर्ड क्लास इन बिहार, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल विकली, 12 जनवरी 1930, पृ.–64–75ण
11. लीला दस्किन, बैकवर्ड क्लास बेनिफिट्स एण्ड सोशल क्लास इन इंडिया, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल विकली, 7 अप्रैल, 1979, टेबुल 1, 2 और 3 पर आधारित।
12. गुनार मायरडल, दि एसियन ड्रामा, न्यूयार्क, 1972, पृ.–231.
13. महेन्द्र प्रसाद सिंह "ऐट द विपेज सेमीनार", जून 1980, पृ.–415.
14. गिरीश मिश्र, बिहार में जातिवाद, दिल्ली, 2010, पृ.–101–102.
15. एम. एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में जाति, नई दिल्ली, 2001, पृ.–82.
16. महेन्द्र प्रसाद सिंह, उपर्युक्त, पृ.–15.
17. एम.एन. श्रीनिवास, पूर्वाद्धत, पृ–103–104.
18. स्मिथ, डी.ई., धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत, प्रिंसटन, 1963, पृ.–317.
19. महेन्द्र प्रसाद सिंह, पोलिटिकल ऐराइवल, सेमिनार, जून 1979, पृ.–13.